REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 7 | APRIL - 2018

स्त्री विमर्श के संदर्भ में एक कस्बे के नोट्स

डॉ आभा एस. सिंह
सहायक आचार्य एवं प्रमुख, हिन्दी विभाग,
वी. एम. वी. कॉमर्स, जे. एम. टी. आर्ट्स व जे. जे. पी. साइन्स कॉलेज, वर्धमान नगर, नागपुर.

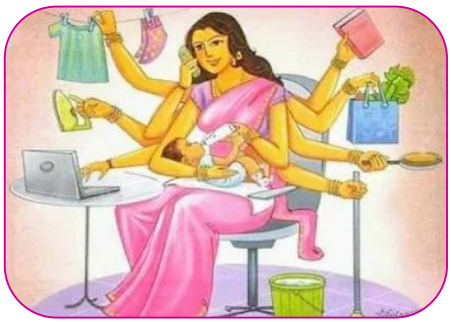

प्रसिद्ध लेखिका एवं स्त्री विमर्श पर खुलकर बोलने वाली विचारक वर्जीनिया वुल्फ़ द्वारा रचित उपन्यास 'अपना कमरा '[अनुवादितकी पंक्तिया है [, 'काल्पनिक रूप से उसका महत्व सर्वोच्च है, व्यावहारिक रूप से वह पूर्णतः महत्वहीन है | कविता मे पृष्ठ दर पृष्ठ वह व्याप्त है इतिहास से वह अनुपस्थित है | कथा साहित्य मे वह राजाओं और विजेताओं की जिंदगी पर राज करती है, वास्तविकता मे वह उस किसी भी लड़के की गुलामी करती है जिसके माँ बाप उसकी उंगली मे एक अंगूठी ठूंस देते हैं | साहित्य मे कुछ अत्यंत प्रेरक शब्द, कुछ अत्यंत गंभीर विचार उसके होठों से झरते हैं, असल जिंदगी मे वह कठिनाई से पढ़ सकती है, कठिनाई से बोल सकती है और अपने पति की संपत्ति है |[१]

ऐसे और भी कई कचोटते हुए विचार स्त्री विमर्श रूपी साहित्य की धारा में सुनाई देते रहते है जो अब तक समाज के आधार स्तम्भ कहे जाने वाले उन लोगो के कान के पर्दे फाड़ रहे है जो स्त्री के अस्तित्व से ही इंकार करते आ रहे हैं । स्त्री होने के प्रश्न को, उसके विचारो को जब स्वतंत्रता पूर्वक रखा जाने लगा तो इस विचारधारा को,जैसे विचारो से "देह की स्वतंत्रता पाने की चाह" जोड़कर आरोपित किया गया । परंतु महिला लेखिकाओ ने भी उतनी ही दबंगता से साबित कर दिखाया की यह देह की नही अस्तित्व की पहचान का प्रश्न है ।

अस्तित्व का यह संघर्ष किसी के लिए भी आसान नही था क्योंकि इस संघर्ष ने प्रारंभ मे ही समाज के बने बनाए ढांचे को खरोचने का काम किया । प्रारंभ आसान इसलिए भी नही था क्योंकि शुरुआत इस विचारधारा से करनी थी कि स्त्री जीवन औरत बनने की प्रक्रिया से भिन्न एक इकाई है, इस विचार का बिजारोपण भी अत्यंत क्लिष्ट था । इसलिए जब स्त्री ने अपने अस्तित्व के साथ खड़े रहने का प्रयास किया तो बेदखल कर दी गई । समाज स्त्रियॉ को पूजनीय जरूर मानता रहा लेकिन तभी तक जब तक वह स्नेह की छाया मे रहे, यही नही तो सेवा भाव को भी समझे । स्त्री का सौंदर्ये भी तभी तक परीभाषित होगा जब तक वह भोग्या बनी रहे । समाज स्त्री को त्याग करती देखना चाहता है सवाल करती नहीं । उसका सम्मान उसके द्वारा किए गए त्याग पर निर्भर करता है ।

परंतु यह स्थिति प्रारंभ से ही नहीं रही है, एक वह दौर भी था जब स्त्री की भूमिका समाज मे महत्वपूर्ण थी, उसका सम्मान सर्वोच्च माना जाता था । किन्तु जब से पितृसत्ताक समाज की अवधारणा मजबूत हुई तभी से स्त्री का दर्जा क्रमशःपतनोन्मुख होना शुरू हुआ है । पितृसत्ताक समाज ने स्त्री को : सम्मान के पद से उतारकर संरक्षण के पद पर बैठा दिया । वह आजीवन पिता, पति व बेटे के संरक्षण मे रहे यह विचार बलशाली हुआ । वह सौन्दर्य की देवी बनी रहे किसी की संपत्ति बनायी जाए तो उसका विरोध नही होगा किन्तु जहां उसने अपनी पहचान का संघर्ष प्रारम्भ किया वह समाज द्वारा अस्वीकृत कर दी जाती । समाज उसे धर्म सिखाता परंतु जिन धार्मिक ग्रंथो को समाज का आदर्श गढ़ने के लिए उपयोग मे लाया जाता है वे ही साबित करते हैं कि स्त्री पर सर्वाधिक अत्याचार उसके पति द्वारा ही किया गया है ।

'एक बार लोकमान्य तिलक जी से पूछा गया था कि, अच्छा वर पाने के लिए महिलाएं गौरी व्रत रखती है, लेकिन अच्छी पत्नी पाने हेतु पुरुष के लिए कोई व्रत का प्रावधान क्यों नहीं है ? इस पर तिलक का जवाब था, 'संसार कि सब स्त्रियाँ अच्छी हैं, समस्या तो पुरुषों को लेकर है, इसलिए स्त्री को ही ऐसे व्रत रखना पड़ता है'।[२]

समाज के बनाए नियमो और मान्यताओ की चारदीवारी मे घिरी स्त्री जब शिक्षा, आत्मनिर्भरता और चेतनता के दायरे मे आई तो उसने वास्तविक जागृत अवस्था का महत्व समझा । जो स्त्री समाज की तय रेखा का पालन सर्वाधिक ईमानदारी से करती रही उसी स्त्री को समाज ने महत्वहीन समझ रखा था । शिक्षा ने उसे वह अवसर दिया की वह उपेक्षित जीवन से निकलकर केंद्र मे आ सके।

वर्तमान दौर मे सामाजिक परिवर्तन अत्यंत तेजी से हो रहे है और उतनी ही तेजी से मूल्यबोध भी बदल रहे है । इस बदलती परस्थिति का लाभ स्त्री को रहा है, और यह परिवर्तन हर ओर दिखाई दे रहा है । अन्तराष्ट्रिय स्तर पर भी १९७५ का वर्ष अन्तराष्ट्रिय महिला वर्ष घोषित किया गया । यह सम्पूर्ण विश्व मे महिलाओ के साथ अपनाए जाने वाले दोहरे मापदंड के प्रति ध्यान आकर्षित करने की संयुक्त राष्ट्रसंघ की कोशिश थी । इन अन्तराष्ट्रिय सम्मेलनों मे समानता, विकास और शांति जैसे विषयो पर चर्चा होती रही है।

प्रारंभ मे आलोचको ने स्त्री स्वतंत्रता को दैहीक आज़ादी माना तो समर्थको ने इसे वैचारिक धरातल की स्वतंत्रता के रूप मे परिभाषित किया । इस स्वतंत्रता का मूल आधार शिक्षा ही है क्योंकि यही वह माध्यम है जिससे स्त्री की संभावनाओ व सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है । शिक्षा के संपर्क मे आने के पहले स्त्री को स्वतंत्रता तो मिली थी किन्तु उतनी ही जितनी पुरुष उसे देना चाहता था । स्त्री दोहरे मापदंड मे उलझाई जाती एक वह जो समाज उसमे चाहता है और दूसरा वह जो वह स्वयं के लिए देखती है और जीना चाहती है ।

महिला मुक्तिवादी लेखिका 'सीमोन द बाउवार' ने इसलिए कहा है कि, "औरत जनमना औरत नहीं होती, उसे औरत होना सिखाया जाता है, और यह काम धर्म, समाज, रूढ़ियाँ और इतिहास मिलकर करते है"।[३]

समय बदला, परिस्थितियां बदली, आवश्यकताए व प्रथमिकताए बदली तो समाज भी बदला और स्त्रियाँ हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर होकर बढ़ने लगी, शिक्षा ने स्त्री को यह अच्छी तरह समझा दिया की सवाल चाहे जाती का हो या स्त्री का उसका संबंध मानसिकता से ही है । वह उन मान्यताओ का विरोध करने लगी जो उसका दमन करती थी । उसकी बौद्धिक क्षमता को समाज भले ही नकार रहा था किन्तु वह बौद्धिक पहचान को समाज के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण मानती रही।

मृदला गर्ग, रमणिका गुप्ता, चित्रा मुद्गल, मैत्रयी पुष्पा, ममता कालिया जैसी कई लेखिकाए स्त्रियों के जीवन को अलग-अलग रूप मे आगे ला रही है । "मृदला गर्ग का एक उपन्यास है 'कठगुलाब' जिसे घनघोर स्त्रीवादी उपन्यास कहा गया है । इसमे कई प्रबल स्त्रीवादी पात्रो के बीच एक अनाम चरित्र है असीमा की माँ का जो न तो आधुनिक है और न ही प्रबुद्ध पर अपनी सम्पूर्ण अस्मिता के साथ जीवन को अपने मूल्य पर जीने का साहस रखती है, जो उसे वह गरिमा प्रदान करता है जिसके बल पर स्त्री संपूर्णता प सकती है और जिसके सामने उपन्यास की बड़ी से बड़ी फेमनिस्ट भी छोटी पड़ जाती है । तात्पर्य यह की स्त्री विमर्श के लिए फेमनिस्ट होने से कही ज्यादा जरूरी है अपनी अस्मिता का बोध जिसके बिना मुक्ति का हर प्रयास अधूरा होगा"।[४]

एक स्त्री का व्यक्तित्व जिस विस्तार से निखरता है वह निसन्देह अस्तित्व की पहचान है और इसी अस्तित्व की पहचान पाने के लिए शिक्षा की तड़प दर्शाता उपन्यास है नीलेश रघुवंशी का 'एक कस्बे के नोट्स' । उपन्यास की नायिका अपने पिता का साथ पाकर एक ऐसे रास्ते पर बढ़ती है जो आसानी से पूर्ण नहीं होता । कस्बाई सौंदर्य से सजा, सामाजिक मान्यताओ मे विश्वास रखने वाला, अपनेपन की खुशबू मे रचा उपन्यास है 'एक कस्बे के नोट्स' जिसके केंद्र मे है नायिका, ढाबा और पिता । पिता की भूमिका मे एक ऐसा व्यक्ति है जो साधारण सा ढाबा चलाता है किन्तु अपनी बेटियों को स्कूली शिक्षा दिलाता है ।

"आमतौर पर गावों या कस्बो यहाँ तक की शहरो मे भी घर के मुखिया पिता की स्थिति मजबूत होती है, मगर कठोर भी होती है । वह अपनी बेटियों को छुई मुई बनाने तथा पर्दे मे रखने के अधिक कायल होते है, जबकि इस उपन्यास मे पिता की भूमिका पारंपरिक पिता से काफी हट कर है । इस पिता को जिसे सभी बच्चे 'कक्का' कहकर बुलाते है, लड़कियो का न तो ढाबे पर काम करना बुरा लगता है और न इसके लिए उसे कोई शर्मिंदगी महसूस होती है । सारा परिवार एक टीम-भावना से और आपसी सहयोग से ढाबे का सारा काम मतलब पकाना, परोसना, काटना, कूटना और यहाँ तक बर्तन भांडे मांजना भी स्वयं करते है तभी इतने बड़े परिवार का गुजारा हो पता है"। [५]

नायिका की सारी बहने चाहे बड़ी हो या छोटी आशा ,उषा ,अन्नी ,शालू ,शिवा से लेकर सीमा तक सभी की अपनी एक अलग पहचान है ,सभी के स्वभाव मे वह एक विशेषता है जो एक को दूसरे से अलग करती है किन्तु उनके बीच का बहनापा उन्हे हमेशा जोड़े रखता |बड़ी बेटी का दिल माँ के लिए धड़कता तो छोटी का पिता के लिए |सारी बहने माता पिता को दुखी देखकर दुखी हो जाती|दूरदर्शी और शिक्षा के महत्व को समझने वाले पिता अपने बच्चों पर नाज करते और उनका पूरा साथ देते |

ग्यारह लोगो के परिवार मे केवल दो पुरुष एक कक्का [पिता] और एक भाई | दोनों पुरुषो मे से एक सकारात्मक और एक नकारात्मक जबकि सारी महिलाएं [लडकीयां] जी जान एक करते हुए काम करती । ग्यारह लोगो के परिवार का खर्चा ढाबे से चलता और कक्का इस बात से खुश होते की बच्चों को किसी बात की कमी नहीं, वे अपने मित्रो से कहते, "बच्चे हमारे मेहनती है । रात दिन लगे रहते है मेरे साथ । अरे जितनी मेहनत करेंगे उतना ही ओढेगे - पहनेगे और खाएँगे पिएंगे, पढ़ाई मे कोई कोताही नहीं बरतते हम"।[६]

नीलेश रघुवंशी का आत्मकथात्मक उपन्यास कही - कही स्त्री विमर्श के भ्रामक स्थिति की खिल्ली उड़ाता जो स्वतंत्रता का अर्थ केवल पुरुष मित्रो से संबंध के आधार पर लगाते, क्योंकि पूरे उपन्यास मे कही कोई नायक नहीं है । है तो केवल हर एक घटनाक्रम का सजीव वर्णन और ढाबे के इर्द-गिर्द भट्टी की आग की तरह सुलगती पढ़ने की प्रबल इच्छा, आत्मनिर्भर बनने की चाह । पढ़ाई अधुरी छोड़कर शालू और शिवा का

विवाह किया गया लेकिन विवाह के उपरांत मिला दोनों का निस्तेज चेहरा बबली को पढ़ने के लिए उकसाता और पिता उसके हौसले को बनाए रखते ।

कस्बे के अपने संस्कार और अपनी गति थी जिसमे परिवर्तन तेजी से दिखाई नहीं देते थे लेकिन परिवर्तन तो हो रहे थे । इस बीच कुछ वस्तुएं बिल्कुल स्थायी थी जिसमे एक विचार भी था कि लड़कियों को शादी से इंकार करने का अधिकार नहीं, उन्हे केवल विवाह निभाना है स्वीकार या अस्वीकार का तो प्रश्न ही नहीं उठता । इतने कड़े सामाजिक पहरे मे भी बबली की आखों मे एक सपना पल ही गया और वह था किताब हाथों मे पकड़े कॉलेज की ओर जाती सावली सी मैडम का चित्र, जिसने बबली के मन को आत्मनिर्भर होने के सौंदर्य से बांध दिया था । "पिता मेरे आगे-आगे, पीछे-पीछे मै सिर पर कंडे रखे हुए रास्ते की जगह किताब दबाए मैडम दिखती रही । मैडम की किताब और कंडे की डलिया बार-बार मेरा चित्त भटकाती"।[७]

एक कस्बे के नोट्स मे वक्ता पात्र न केवल आत्मनिर्भर बनने का सपना देख रही है बल्कि उपन्यास का हर एक स्त्री पात्र अपनी उपस्थिती दर्ज कराती है । परिवार मे माँ है पर वह हमेशा ममतामई और पतिपरायणा बनकर नहीं रहती अपितु उसमे छिपी विद्रोहीनी कभी भी जागृत हो सकती है । बेटियों को आजादी से उड़ान भरते देख वह समाज के दकियानूसीपन के लिए आशंकित जरूर होती है पर रोती बिलखती नहीं। नायिका के साथ किसी मतभेद पर पिता की तरफदारी करते ही वह तुरंत कहती है, "तू समझ ले और अपने करिया बाप को भी समझा दे । माँ का पारा सातवे आसमान पर पहुँच जाता । उसके हाथ मे जो कुछ भी होता जमीन पर दे मारती"।[८]

बबली ने एक निर्णय लिया था की उसे कुछ बनना है कॉलेज वाली मैडम की तरह, यह निर्णय लेना जितना कठिन था उससे कही ज्यादा कठिन था निर्णय पर बने रहना क्योंकि बाहर का समाज वही था जो स्त्री की बौद्धिकता को नकारता है और विवाह को एक ऐसी दवा की तरह देखता है जिसके होते ही मानो स्त्री की सारी इच्छाए पूरी हो जाती है । यही कारण रहा होगा जिससे लड़की का विवाह से इंकार समाज मे किसी लाइलाज बीमारी के लक्षण की तरह देखा जाता है।

स्त्री का आत्मनिर्भर बनने का स्वप्न हो चाहे अपनी इच्छा से जीवन यापन करने की चाह सब कुछ निशाने पर आ ही जाता है । बबली को कॉलेज के प्रिन्सिपल ने सिखाया था कि तेज गति से ज्यादा कठिन है धीमी गति से साइकल चलना क्योंकि उसमे गिरने और टकराने की संभावना अधिक होती है और यह हर स्त्री का अनुभव है कि उसका आत्मनिर्भर होना अपने अस्तित्व के लिए खड़ा होना समाज मे धीमी गति से साइकल चलाने की तरह ही कठिन है, जिसमे विचारो का टकराव तो निश्चित तौर पर होता है ।

बबली ने शिक्षा ग्रहण करने, आत्मनिर्भर बनने के स्वप्न के बदले मे बहुत सी किमत चुकाई जो शायद ही किसी पुरुष को अपने सपने पूरा करने के लिए चुकानी पड़ती हो । और यह सारी जद्दोजहद भी किसलिए तो अपने पिता के मुख से कहलवाने के लिए की उनकी बेटी अपने पैरो पर खड़ी हो गयी ।

बबली अपने स्वप्न को अपनी स्वतंत्रता को जिन शब्दो में बयान करती है, वह सांकेतिक है समाज की हर स्त्री के मार्ग मे आने वाली अड़चनों का मुश्किलो का । वह कहती है,एक लंबी छलांग के बा" रे मे तो हमने कभी सोचा ही नहीं । एक छोटा सा रास्ता पार करने में ही सारे सपनों का तेल निकाल गया । छोटी-छोटी सी चिजे पाने में जब एक नहीं कई जीवन स्वाहा हो रहे है तो किसके बड़े सपने, जब छोटी - छोटी पगडंडी नही तो कैसा पुल और कौन सी सड़क, चौराहे ।"[९]

परंतु यह केवल एक समस्या है और हर समस्या का हल होता है स्त्री के हिस्से मे संघर्ष है तो वह संघर्ष के द्वारा ही शिक्षा की सहायता से आत्मनिर्भर बन अपने अस्तित्व को स्थापित कर ही लेंगी क्योंकि उसके मार्ग में कक्का जैसे पिता और प्रिन्सिपल सर जैसे जिज्ञासा बनाए रखने वाले मार्गदर्शक भी होंगे ।

संदर्भ

१) उदभावना-अंक-110-111, मार्च 2014, लेख - कालूलाल कुलमी द्वारा, पृ.क्र. 63
२) बहु वचन - अंक - 41, अप्रैल-जून - 2014, लेख - जयनन्दन द्वारा, पृ.क्र. 130
३) वहीं, पृ.क्र. 129
४) कथा - अंक - 16, मई - 2012, लेख - सुनीता गुप्ता द्वारा, पृ.क्र. 184
५) परिकथा - 'नवलेखन अंक - जनवरी-फ़रवरी - 2013, लेख - जसविंदर कौर विन्द्रा, - पृ.क्र. 117
६) एक कस्बे के नोट्स - ले. नीलेश रघुवंशी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2012, पृ.क्र. 57
७) वही - पृ.क्र. 09
८) वही - पृ क्र. 131
९) वही - पृ.क्र. 218